धर्म और कर्म का परस्पर संबंध

लेखक
संजय जैन

स्पंदन पारमार्थिक शिक्षा एवं सामाजिक उन्नयन समिति (रजि.)

क्या वास्तव में कर्म प्रधान है? या धर्म का भी उसमें कुछ हस्तक्षेप होता है और अगर ये समावेश अनुमोदनीय है तो किस परिमाण में धर्म की सहभागिता कर्म को प्रभावित कर सकती है? चलो एक क्षण के लिए स्वीकार भी अगर कर लिया जाता है कि धर्म और कर्म परस्पर एक सिक्के के दो पहलूँ के समान है तो कौन सा पहलूँ कब प्रभावी होकर परिणाम को प्रभावित करने की चेष्टा करता है। इसका निर्णय कैसे होता है? और कौन सी अदृश्य महाशक्ति इसका नियंत्रण हाथ में रखती है?

परंतु इन सब जिज्ञासाओं का प्रत्युत्तर प्राणीमात्र तो प्रतिदिन जानने को लालायति रहता है। उसके मन में हमेशा ये दुविधा का मायाजाल उसकी बुद्धि द्वारा बुना जाता रहता है, कि अगर वो धर्म करना भी चाहे तो उसके मायने अखिर क्या हो? उसका स्वरूप किन आयोमों में प्रभावी रहेगा? और इस आधुनिक संसार की निरतंर परिवर्तित होती मायावी परिस्थितियों में वो स्वयं सांसारिक चर्याओं का पालन किस तरह और कैसे करे की वो अपनी उपयोगिता इस संसार में भी साबित कर दिखाए और साथ ही मानव धर्म का फर्ज भी ईमानदारी पूर्वक निर्वहन कर सके।

जहाँ तक मैंने स्वयं प्रत्यक्ष जो अनुभव किया है या मुझे परमपिता द्वारा स्वयं बारम्बार ये अनुभूति प्रदान कि गई है। कि बड़ी बडी पूजा पाठ हवन, पूजन, अनुष्ठान, व्रत, जलसा, आरती, माला गिनने इत्यादि प्रक्रियाओं के जोर शोर से पालन करना या जबर्दस्ती करवाने से ही वो प्रसन्न हो सकता है, ये एक गलत धारण हो सकती है।

ईश्वर तो सहज सरल, सर्वमान्य और सर्वव्यापक हैं। उसकी असीम अनुकंपा सभी जीवों को जिन्होंने इस संसार में जन्म लिया है समान रूप से सदा प्राप्त होती है, ईश्वर अपनी संतानों के प्रति आशीर्वाद प्रदान करने में किंचित मात्र भी भेदभाव नहीं करता है और आखिर भला वो ऐसा क्यों करेगा ? ये तो उस तुच्छ प्राणी मात्र की सीमित सोच की अवधारणा है जो तनिक भी विपरीत परिस्थिति सामने आने पर बजाए उसका सामना डटकर करने के, अपने भाग्य को कोसने लगता है कि उसका तो भाग्य ही खराब है।

इसको सूर्यदेवता कि दैनिक प्रक्रिया द्वारा बहुत आसानी से समझा जा सकता है। प्रतिदिन सूर्य अपनी तेजस्वी किरणों द्वारा पूर्व दिशा से उदित होकर सम्पूर्ण संसार को प्रकाशमान कर देता है। ठीक उसी समय पश्चिम दिशा याने की पृथ्वी का दूसरा छोर जो की विपरीत दिशा में होता है उस समय वहां अंधेरा होने की प्रक्रिया आरंभ होने लगती है इसी तरह सुख और दुख की प्रकिया, धूप छांव की भांति व्यक्ति के भाग्य से अठखेलियां खेलती रहती है। बस व्यक्ति अगर सुक्ष्मता से अध्ययन करे तो इसी में जीवन का रहस्य छुपा हुआ है। और आसान प्रक्रिया से भी इसको हम जान सकते हैं। जैसा कि ऊपर बताया गया है कि सूर्य समभाव से अपनी रश्मियाँ बिखेरता है। उस समय यदि कोई व्यक्ति खुले मैदान या खुले परिसर में यदि मौजूद है तो वो सूर्य की उन तेजस्वी किरणों को सम्पूर्ण रूप से अपने अंदर समाविष्ट कर सकता है। बस इसी तरह मानव मात्र अगर अपने खुले दिलो दिमाग के साथ किंचित मात्र भी पंचेन्द्रिय विकार को धारण किये बगैर, आत्मा की संपूर्ण निर्मलता के खुले क्षितिज में अगर विचरण करता है तो उसको भला ऊस परमशक्ति की कृपा पाने का उत्तराधिकारी होने से

भला कौन रोक सकता है ? और ये उसका स्वभाविक हक भी है। परन्तु इसके विपरीत व्यक्ति जब सूर्यदेवता का प्रभाव अपने पूर्ण शबाब पर हो, अगर उस समय किसी छत के साये में बैठा हो या फिर सीमेंट या कांच की चारदीवारी में खुद को उलझाकर बैठा है तो क्या सूर्य की किरणों का तेज उस तक पहूंच जाएगा। नहीं ?

फिर इसमें आखिर भला किसकी गलती मानी जाएगी, उस सूरज की जो अपनी पूर्ण आभा की रश्मियों के साथ, आपके इंतजार में आप पर कृपा बरसाने को तैयार बैठा है या आपकी, जो किसी चारदिवारी के अंदर खुद को समेटे हुए बैठे है। जवाब बिलकुल स्पष्ट है, गलती आपकी है कि आपने प्रयत्न रुपी कर्म ही नहीं किया है कि आपको भी उन रश्मियों का सम्पूर्ण लाभ मिल सके, आप ही बताइये इसमें भला भाग्य का क्या और कितना दोष है ? ठीक इसी तरह वो परमपिता अपनी संपूर्ण उदारता और दया की किरणें आपके ऊपर न्योछावर करने के लिए स्वंय ही आतुर बैठा है और एक हम है कि अज्ञान रुपी माया की चारदिवारी और पंचेन्द्रिय विकार रूपी छत के साये में स्वयं को संलिप्तता की चादर लपेटे हुए बैठे हैं। फिर ये भाग्य का दोष है या फिर उस विधाता का या फिर आपका ही आपने कर्मरूपी प्रयत्न के हथौड़े का प्रोयग नहीं किया, अपने आसपास की इन मायारूपी कषायों की दीवारों को तोड़ने हेतु। अब बताइये अगर आप प्रयत्न रुपी कर्म करते तो भला आपको कौन रोक सकता था ईश्वर की कृपा पाने हेतु। विधाता की आशीर्वाद की प्रक्रिया को भाग्य के पैमाने पर रखा जा सकता है। परन्तु उस आशीर्वाद पाने का अधिकारी बनने हेतु प्रयत्न करना ही कर्म कहलाता है। सर्वमान्य उदाहरण है कि विधाता तो अपना आशीर्वाद एक भोजन की थाली में भाग्य के स्वरूप में आपको परोस देता, परंतु क्या मात्र इससे ही आप उस भोजन का लुत्प उठा पाएंगे ? **नहीं ना।**

आपको उस भोजन का लुत्फ उठाने हेतु कर्मरुपी प्रयास करके अपने हाथों को माध्यम बनाकर कर्म करना ही पड़ता है ठीक उसी तरह सृष्टि का संचालन भी भाग्य और कर्म के संतुलन रूपी तराजु में है जिसका संचालन स्वयं उस परमपिता के हाथों में ही है।

और अपने हिस्से की भाग्य की दौलत आपको कर्म रुपी हथोड़ों से ही जल्दी प्राप्त हो सकती है। इसलिए कर्म निरंतर करते रहना भी धर्म का ही एक पहलू है।

परन्तु कुछ लोग धर्म को या भाग्य को ढाल बनाकर कर्म करते हैं और फिर आशानुरूप सफलता ना प्राप्त होने पर भाग्य को कोसने में किसी भी तरह की कोताही नहीं बरतते है। ऐसे लोग धर्म या भाग्य की आड़ में अपने कार्य में पूर्ण निष्ठा और ईमानदारी नहीं बरतते हैं जिससे उनके लक्ष्य प्राप्ति हेतु किये जाने वाले प्रयासों की संपूर्णता नहीं आ पाती है, प्रयत्न पूर्ण समर्पण भाव से नहीं किये जाते हैं, और परिणाम की असफलता का ठीकरा भाग्य के माथे फोड़ दिया जाता है। भाग्य किसी कर्मवीर पुरुष को अपनी मंजिल तक पहुंचने से कभी नहीं रोकता है और भला क्यों रोकेगा क्योंकि कर्म भी धर्म का ही एक पहलू है।

फिर एक सरल उदाहरण ले की आपको एक से सौ तक गिनती गिनना है और आप अपने गिनने की प्रक्रिया रूपी कर्म का आरंभ कर देते हैं तो यकीन मानिये आपका सौ तक याने की अपने लक्ष्य तक पहुंचना तयशुदा है और इसको कोई भी नहीं रोक सकता है आपको अपनी मंजिल पाना तय है।

परन्तु ठीक इससे उलटा आप इस गिनती को पूरा क्रमबद्ध प्रक्रिया के द्वारा करने के बदले, पूजा-पाठ, जाप, अनुष्ठान इत्यादि का सहारा लेवें और भगवान से कहे कि प्रभु तु मुझे मंजिल तक पहुंचा दे, हम तेरी पूजा पाठ जाप इत्यादि करेंगे परन्तु मंजिल प्राप्ति हेतु आवश्यक ईमानदार प्रयास नहीं करेंगे और फिर जब सफलता नहीं प्राप्त होगी तो पूजा-पाठ, मन्नत इत्यादि का वास्ता देंगे कि प्रभु मैंने ये किया, वो किया, सबकुछ किया परन्तु मेरा कार्य नहीं बना। इल्जाम उस ईश्वर या भाग्य के माथे डाल देंगे। जबकि वास्तविकता में उसका आपकी चर्याओं से कोई नज़दीक का वास्ता नहीं होता है क्योंकि उसने तो इस विशाल सृष्टि के अहर्निशः संचालन हेतु आयाम नियत कर दिये हैं और उन्हीं आयामों की परिधि के दायरे में ही सफलता - असफलता, लाभ-हानि, सुख-दुख, का परिमाण भाग्य और कर्म के चक्र से परिसंचालित होता है जो मनुष्य के जीवन रुपी गाड़ी को तय मुकाम तक पहुंचाता है। सृष्टि के इस नियम को मनुष्य मोह के वशीभूत होकर जानबूझकर पूर्ण रुप से निरपेक्ष भाव रखकर समझना ही नहीं चाहता है। वो तो मात्र स्वयं के फायदे नुकसान के पैमाने के परिमापन से ही कभी भाग्य को प्रधानता प्रदान करता है, इसके अलावा भी इन्हीं फायदे नुकसान के परिमापन की प्रक्रिया में वो ईश्वर को भी शामिल कर लेता है और फिर वही अपने अल्पज्ञान के आधार पर ईश्वर, धर्मग्रंथो एवं धार्मिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण भी स्वयं के लाभ-हानि के गणित से करने का प्रयत्न करता है। वो ये जानने का प्रयास नहीं करना चाहता है की व्यापार इत्यादि में एक का नुकसान होने पर ही तो दूसरे का फायदा होगा और फिर वो दूसरा व्यक्ति भी तो आखिर ईश्वर की ही संतान है। क्या ईश्वर आपको खुश करने के लिए आपका भाग्य आपके पक्ष में कर देगा फिर दूसरों को क्या वो दुख देगा ? ये केसा न्याय है ? क्या ईश्वर ऐसा कर सकता है ?

बिलकुल नहीं। ये तो हमारे उस संकुचित दिमाग की अवधारणा है, जो की हमको व्यापक परिपेक्ष्य में अवलोकन करके सही वस्तुस्थिति तक नहीं पहुंचने देना चाहती है।

सापेक्षता और निरपेक्षता का सही संतुलन अगर व्यक्ति व्यावहारिक जीवन में कर सके तो फिर उसको सृष्टि एवं सृष्टि के नियम, ईश्वर की कृपा इत्यादि अलौकिक अवधारणाओं की सही व्याख्या समझने में बहुत मदद मिलती है। कर्म के प्रति सापेक्षता का भाव एवं संसार के प्रति निरपेक्षता की भावना का अनुमोदन व्यक्ति अगर कर लेता हे तो उसका जीवनपथ आसान हो जाता है। संसार के प्रति निरपेक्षता से आशय है इस संसार एवं इस सांसारिक चर्याओं के प्रति समभाव या निर्विकार भाव रखते हुए जीवन पथ पर निरंतर चलना होता है पंचेन्द्रिय विकार का त्याग का लक्ष्य निरंतर सामने दृष्टिगत रखना होता है। वहीं कर्म रूपी सापेक्षता का आशय है अपने कर्म या कर्तव्य के प्रति पूर्ण ईमानदार परिश्रम एवं सम्पूर्ण निष्ठा का समावेश रुपी सापेक्षता का भाव निरन्तर अपने लक्ष्य प्राप्ति हेतु आत्मसात करते रहना होता है और इस संसार में अधिकांश व्यक्ति इससे उल्टा व्यवहार करते हैं तो संसार में तो सापेक्षता का सिद्धांत का पालन करके मोहबंध के कारक का पर्याय स्वरूप धारण करते हैं और फिर सांसारिक मायाजल में उलझकर रह जाते हैं। वहीं दूसरी और लक्ष्य प्राप्ति हेतु किये गये कार्य में निरपेक्षता को प्रधानता देते हैं। याने की लक्ष्य की प्राप्ति हेतु संकल्प रुपी सापेक्षता को गंभीरता से नहीं लेते हैं अपने कर्तव्यबोध को बहुत ही हल्के में लापरवाही पूर्वक निभाना चाहते हैं इसलिये पूर्ण सफलता की प्राप्ति में अक्सर बाधा आती है और ऐसा इसलिये होता है क्योंकि मनुष्य कम से कम मेहनत में या बगैर कठोर परिश्रम के सहज रूप से सब कुछ पाना चाहता है। यर्थातथा के कठोर धरातल पर चलने से वो जी चुराता है और अक्सर

ऐसा विचार और व्यवहार करता है कि मंजिल स्वयं ही चलकर उस तक पहुंच जाए। ये पंचमकाल या यु कहे कि कलयुग का प्रभाव है कि इंसान रातोंरात अमीर बन जाना चाहता है। वो ईश्वर या प्रकृति प्रदत्त किन्हीं नियमों या बंधनों के दायेर में नहीं बंधना चाहता है। इन सबके चलते अगर वो मनुष्य परिस्थिति वश कुछ अगर पा भी लेता है। तो उसकी स्थिति बगैर नींव वाली ईमारत की तरह होती है जो वक्त के तूफान का एक भी गहरा थपेड़ा नहीं सहन कर पाती है और ताश के पत्तों के महल की भांति भरभराकर ढह जाती है। वस्तुतः अगर देखा जाए तो उस समय व्यक्ति की स्थिति उस बिना पतवार के नाव के समान हो जाती है जिसमें उस पर सवार याने की नाविक तो रहता है परन्तु नाव रूपी जिन्दगी पर उसका स्वयं का कोई नियंत्रण नहीं रह जाता है और इसे बिना पतवार वाली नाव के समान उसकी जिन्दगी भी इस जीवन के भवसागर में वक्त के थपेड़ों से निरन्तर हिचकोले खाती रहती है और चाहकर भी वो उस पर नियंत्रण नहीं कर पाता है क्योंकि तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। अपनी जिन्दगी रुपी नाव की पतवार, याने की आत्मनुसार धर्मानुशासन को उसने कभी गंभीरता से लिया ही नहीं जिससे की भारी तूफान के वक्त घोर निराशा के क्षणों में, सम्पूर्ण रुप से टूटते होंसले के वक्त, कोई तो लाईट हाऊस हो जो उसकी जीवनरूपी नैया को किनारे लगा सके। अंततः ऐसे व्यक्ति की जीवनरूपी नाव इस माया के घनघोर महासागर के भवंरजाल में उलझकर ना जाने कब और कहां खो जाती है स्वयं इसके लिये उसको भी ज्ञान नहीं रह पाता है। इस जगत में अधिकांश लोगों का हश्र इसी परिणीति के रूप में होता है। फिर भी लोग समय रहते जागना नहीं चाहते हैं कुछ समझना नहीं चाहते हैं और कुछ करना भी नहीं चाहते हैं।

कुछ लोग इस रहस्य को समझ भी लेते हैं परन्तु उनके कर्मबंध इसमें बाधा बनकर उनको पुरुषार्थ का आचरण करने से रोकते हैं। उनमें इतनी हिम्मत या यूं कहें की साहस नहीं होता है की मोह-माया के नश्वर बंधनो को वो उखाड़ फेंके और ईश्वरीय भक्ति की लौ का दीपक अपने अन्तर्मन में जलाकर स्वयं अपना आत्मकल्याण कर सके। इस स्थिति में ऐसा बहुत कम ही संभव हो पाता है क्योंकि तब तक निराशा का घनघोर अंधेरा उसके अन्तर्मन में प्रविष्ठ हो जाता है और उसका साहस सांसारिक लहरों के सागर में निरन्तर हिचकोले खाने लगता है।

क्या ऐसी स्थिति को रोकना संभव है? क्या ये परिस्थितियाँ परिवर्तित हो सकती है ? अगर हां तो किस तरह ? हाँ ऐसा संभव है जबकि व्यक्ति अपने दैनिक दिनचर्या के कर्म को पूर्ण निष्ठा, परिश्रम और ईमानदारी से निभायें। इसके साथ उसको सिर्फ इतना करना होता हैं कि प्रतिदिन अपनी दैनिक दिनचर्या आरंभ करने से पूर्व विधिवत उस परमपिता से विनयपूर्वक कर्म करने की अनुमति एवं आशीर्वाद ले लेवें। ठीक इसी तरह दिन की समाप्ति याने की सोने से पूर्व अपनी दिनभर की दैनिक क्रियाकलाप की जानकारी पुनः उस परमपिता को प्रस्तुत करके स्वयं बेफिक्र होकर विश्राम कर लेवें।

बस शर्त एक ही है कि दोनों प्रक्रिया पूर्ण अन्तर्मन से सम्पूर्ण समर्पण भाव के साथ ही होना चाहिए। थोड़े ही दिनों में आपको इसका प्रभाव महसूस होने लगेगा। एक अनजानी अदृश्य शक्ति का आभास आपको यदा-कदा विस्मित कर सकता है। आपकी कार्यशैली और प्रभाव में परिवर्तन स्पष्ट रूप से चिन्हाकिंत होने लग जाएगा। कार्यों की दुश्वारियां शनैः शनैः कम होती महसूस होने लगेंगी। इसके अलावा बहुत से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष

अनुभव सामने आने लगते है। आत्मा में एक अजीब तरह की अनुभूति की तरंगे हिलोरे मारने लगती है। कभी कभी व्यक्ति अपने आसपास घटित हो रहे इन विस्मयकारी परिवर्तनों को समझ ही नहीं पाता है और इन छोटी छोटी सांसारिक मायावी घटनाओं को चमत्कार का नाम दे देता है। परन्तु ऐसा नहीं होता है। चमत्कार घाटित होना भी अपने आप में एक विस्मयकारी रहस्य है क्योंकि इसका प्रारब्ध कभी भी तयशुदा मापदंड के अनुसार नहीं होता है ये तो अचानक घटित होकर चमत्कृत होने वाली प्रक्रिया होती है शायद इसीलिये इसको चमत्कार नाम दिया गया है।

इसीलिये बुद्धिमान एवं ज्ञानी पुरुष इन चमत्कारों के प्रलोभन में उलझकर अपना समय एवं उर्जा नष्ट नहीं करते हैं अपितु वो इन घटनाओं को भी समभाव से स्वीकारते हैं। परन्तु साधरण या अल्पज्ञानी व्यक्ति इन चमत्कारों की चमक से चकाचौंध होकर अपना विवेक खोने लग जाते हैं और धर्म एवं पुरुषार्थ के पथ में चलने हेतु भी शार्टकट ढूंढने लग जाते हैं। इससे इनकी चर्या की निष्ठा शनैः शनैः कमजोर होने लगती है। ऐसे व्यक्ति कर्म पर कम एवं भाग्य पर ज्यादा आश्रित होने लग जाते हैं। इससे स्वभाविक रुप से उनके कार्यों के परिमाण पर प्रश्नचिन्ह लगने लग जाता है। जिससे की उनका परिणाम प्रभावित हुए बगैर नहीं रह पाता है और अन्ततः व्यक्ति को मनमाफिक सफलता नहीं मिल पाती है। जिसकी उसको तलाश रहती है। फिर उसको थोड़े में संतोष करना पडता है। जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण पुनः बदलने लगता है। इसीलिये ज्ञानी पुरुष दैनिक दिनचर्या में कार्य को प्रधानता देते हैं और रिजल्ट याने की फल की चिंता उस परमपिता के हवाले कर देते हैं। बस इसी रहस्य को भगवान श्रीकृष्णजी ने गीतासार के माध्यम से अर्जुन को समझाया है और वास्तव में ये ही इस सृष्टि का इस ब्रह्मांड का और इस जीवन का सत्य है। व्यक्ति अगर इस परम सत्य को अपने जीवन में पूर्णतया अंगीकर कर लेवे तो उसका कल्याण होना निश्चित है।

बस ये ही धर्म और कर्म एवं भाग्य का परस्पर संबंध है जो की जीवनरूपी गाड़ी को नियमित एवं निरंतर परिसंचालित करता रहता है। सिर्फ भिन्न-भिन्न आयामों के निमित्त परिणाम बदलते रहते हैं और ये ही परिवर्तित परिणाम परस्पर सुख और दुख का पर्याय बनते हैं जो की इस जीवनचक्र का अभिन्न हिस्सा है। बस..... ये ही है माटी के पुतले मनुष्य के भाग्य और पुरुषार्थ की कहानी जिसका रचियता निर्माता, निर्देशक, सबकुछ सिर्फ और सिर्फ वो परमपिता परमेश्वर हैं।

उसके चरणों में बारम्बार शत्-शत-नमन।।